

प्रेमराशि के संचय का सन्देश 'मेघदूतम्'

—डॉ. मिथिलेश पाण्डेय

(एसोशिएट प्रोफेसर) संस्कृतविभाग,
के.ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज, उ.प्र.

कालिदासेन या सृष्टिः, समृद्धा खलु कल्पिता।

अपूर्व कमनीयत्वं, तस्या लोकेषु विश्रुतम्॥

महाकवि कालिदास विरचित 'मेघदूतम्' समस्त संदेशकाव्यों में 'प्रेमराशि के संचित कलश' के रूप में इस विश्व की अद्वितीय काव्यनिधि के रूप में जाना जाता है। संस्कृत साहित्य के गीतिकाव्यों में इस 'प्रसाद एवं माधुर्यपूर्ण शृंगारसंस्क्रित' रमणीय कृति को जो सम्मान मिला है, वह अन्य किसी काव्य को उपलब्ध नहीं हो सका। सुधी साहित्यकारों ने इसे खण्डकाव्य की संज्ञा से सम्बोधित किया है। मेघदूतम् का इतिवृत्त यद्यपि अत्यन्त क्षीण किंवा नगण्य है, तथापि यह काव्यकृति प्रेमार्द्र कातरहृदय की मधुर उद्वेजनाओं का मनोरम कोष है। यही कारण है कि मैकडॉनल आदि विद्वानों ने इसे 'गीतिकाव्य' (Lyric) कहकर सम्बोधित किया है। आचार्य मल्लिनाथ के अनुसार इस काव्य में कुल 118 पद्य हैं। विरहवर्णन के लिए अत्यन्त अनुकूल प्रवृत्ति वाला 'मन्दाक्रान्ता' छन्द इसमें प्रयुक्त हुआ है। इसकी उपजीव्यता का श्रेय ब्रह्मवैवर्तपुराण की योगिन्येकादशीकथा को प्राप्त है।

कालिदास के इस प्रेमकथा की सर्वप्रमुख विशेषता 'प्रकृति में मानव सदृश चेतना' की अनुभूति करना है। उन्होंने प्रकृति को कहीं भी मूक, चेतनाशून्य अथवा निर्जीव नहीं स्वीकार किया है, अपितु उस पर व्यक्तिगत चेतना का आरोप करके उसमें मानवसुलभ आकृति, अवस्था, भावना एवं चेष्टाओं का साक्षात्कार किया है। 'मेघदूतम्' में मेघ को दौत्यकर्म सौंपकर महाकवि ने उसका मानवीकरण किया है।

मेघदूतम् का नायक 'हेममाली' अलकापुरी का नागरिक यक्ष (देवयोनि विशेष) धीरप्रशान्त तथा एक ही नायिका में आसक्त होने के कारण 'अनुकूल' नायक है। यक्ष की पत्नी 'विशालाक्षी' विनयशीलता, सरलता आदि गुणों से संयुक्त पतिव्रता 'स्वकीया' नायिका है। प्रवासात्मक विप्रलम्भशृंगार ही इसका अंगी रस है। नायक और नायिका दोनों आलम्बनविभाव हं। मेघप्रादुर्भाव आदि उद्दीपनविभाव हैं। ज्ञानशून्यत्व आदि अनुभाव हैं तथा ग्लानि इत्यादि व्यभिचारी भाव हैं।

इस काव्य के इतिवृत्त को यदि देखा जाय तो अलकापुरी के अधीश्वर कुबेर ने अपने सेवक यक्ष को, कर्तव्यच्युति के कारण, एक वर्ष के लिए निर्वासित कर दिया है। निर्वासन की अवधि को यक्ष दक्षिण भारत के 'रामगिरि' पर्वत पर व्यतीत करता है। आठ मास व्यतीत करने के बाद, वर्षाऋतु के आगमन से उसके प्रेमकातर हृदय में अपनी प्राणदयिता यक्षिणी की स्मृतियाँ सहसा उद्वेलित हो जाती हैं और वह 'मेघ' को दूत बनाकर अपनी प्रेयसी के पास अपना प्रणयसंदेश प्रेषित करता है।

प्रस्तुत काव्य के पूर्वाद्ध (पूर्वमेघ) में यक्ष ने रामगिरि से अलका तक के मार्ग का विस्तृत वर्णन किया है। तदुपरान्त उत्तराद्ध (उत्तरमेघ) में अपनी प्रेयसी की विरहविह्वल दशा का कथन करते हुए, अपना हृदयविदारक संदेश भेजा है। इस स्वल्प इतिवृत्त को लेकर, कवि ने अपनी प्रसाद एवं मधुर्य गुणों से संस्क्रित वाणी को हृदयविद्रावी 'मन्दाक्रान्ता' छन्द की अलौकिक रसधारा में प्रवाहित किया है, जिसमें काव्यरसिक अद्यावधि अवगाहन करते चले आ रहे हैं।

मेघ अथवा प्राकृतिक वस्तुओं को दौत्यकार्य में नियोजित करके, संदेशप्रेषण की भावना का मौलिक श्रेय महाकवि कालिदास को प्राप्त है। डॉ. भीखनलाल आत्रेय ने 'योगवाशिष्ठ' महारामायण के निर्वाण प्रकरण के उत्तरार्ध के 119 वें सर्ग में 'मेघदूतम्' से संबन्धित वर्णन की ओर निदेश करते हुए, कतिपय ऐसी पंक्तियों को उद्धृत किया है, जो 'मेघदूतम्' तथा 'योगवाशिष्ठ' दोनों में समान रूप से मिलती हैं। सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने 'मेघदूतम्' की कल्पना को वाल्मीकीय रामायण की उस घटना से गृहीत बतलाया है, जिसमें राम 'सीता' के लिए हनुमान के द्वारा संदेश भेजते हैं।

ऋग्वेद के मंत्रों एवं सूक्तों के देवताओं की व्याख्या करने वाले शौनकमुनि कृत प्रसिद्ध ग्रन्थ बृहद्देवता के पाँचवें अध्याय के 50 से 80 श्लोक पर्यन्त अत्रि ऋषि के पौत्र श्यवाश्व का आख्यान वर्णित है, जिसमें ऋषिकुमार ने अपनी मंत्रदर्शन की नवोपलब्ध शक्ति का बखान करते हुए, राजर्षि दार्ष्य रथवीति के पास, उनकी सुन्दरी कन्या के प्रति अपनी अनुरक्ति व्यंजित करने हेतु 'रात्रि' को दूत बनाकर भेजने का उपक्रम किया है। इस कथा के आधार पर डॉ. मंगलदेव शास्त्री ने 'मेघदूतम्' की मौलिकता का प्रत्याख्यान किया है, तथापि कालिदास ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा जिस 'रसोद्गारगर्भगर्भित' नवशब्दार्थ समन्वित काव्यसृष्टि की है, वह किसी भी सहृदयहृदय को द्रवित कर देने वाली रचनाओं में मूर्धन्य स्थान रखता है। कान्ताविप्रयुक्त यक्ष इतना क्षीण एवं कृशकाय हो गया है कि उसकी कलाई से स्वर्णिम कगन भी ढीला होकर गिर पड़ा है। ऐसी अवस्था में अपने मस्तक की टक्कर से मिट्टी के टीले को ढहाने की क्रीड़ा में व्यस्त हाथी के समान पर्वतशिखर से लिपटे हुए 'मेघ' को आषाढ मास के पहले दिन उस यक्ष ने देखा। वह मेघ कामकौतुक की अभिलाषा को उद्दीप्त करने वाला है तथा प्रिया की सुधि में ही लीन रहने

के कारण वह यक्ष अपने कर्तव्य से स्थलित हो चुका है। यहाँ उल्लेखनीय है कि अपनी प्राणवल्लभा के साथ आस्वादित केलिक्रोडाओं की स्मृतियाँ, नवीन अर्थ से गर्भित होकर, यक्ष को कातर बना देती हैं। अतएव वह बहुत देर तक मेघ के सम्मुख अपने आँसुओं को रोके रहता है, लेकिन जब इन मेघों को देखकर, सुखी जनों की चित्तवृत्ति भी डगमगा जाती है, तो उन दुर्भाग्यदलितों की क्या दशा होगी, जो अपनी प्राणदयिता के कण्ठाश्लेष के लिए तड़प रहे हैं।¹

कृशकाय यक्ष को उसकी प्यारी पत्नी की चिन्ता यह सोचकर अहर्निश पीड़ित कर रही है कि उसके वियोग में उसकी प्राणप्रिया भी कठिनता से जीवन धारण कर रही होगी। वस्तुतः प्रेम द्विपक्षीय व्यापार है, यदि प्रेमी को यह भान रहे कि उसकी प्रिया भी उसके लिए तड़प रही होगी, तो संभवतः उसके प्रेम का ज्वर निरन्तर बढ़ता ही जाता है।

स्नेहकातर यक्ष पहले कुटज-कुसुमों से मेघ की अर्चना करता है तथा कुशल समाचार पूछ कर उसका स्वागत करता है, तदुपरान्त उससे अपना सन्देश कहता है। यद्यपि भौतिक दृष्टि से 'मेघ' धूम, ज्योति, सलिल एवं मरुत् का समवाय है। अतएव उसे संदेशवाहक का कार्य नहीं सौपा जा सकता, तथापि अधीरता एवं उत्कण्ठा से अभिभूत होने के कारण, यक्ष को स्थिति की असंगति का बोध नहीं है और वह मेघ से प्रार्थना करता है कि वह उसका सन्देश उसकी प्रिया तक ले जाये, क्योंकि कामार्त्त व्यक्ति चेतन एवं अचेतन पदार्थों के समीप समान भावापन्न होकर दीन बन जाते हैं।²

महाकवि कालिदास ने 'मेघ' को साधु, सौम्य, सुभग एवम् आयुष्मान् इत्यादि लुभावने विशेषणों से सम्बोधित किया है, क्योंकि वह स्थूल और सूक्ष्म, दृश्य और अदृश्य, निरिन्द्रिय और सेन्द्रिय सभी पदार्थों के साथ समान व्यवहार करता है।

आचार्य मल्लिनाथ ने 'प्रकृतिपुरुष' कामरूप का अर्थ किया है, 'इच्छानुसार रूपधारण में समर्थ प्रधानपुरुष', लेकिन इस अर्थ से कवि का अभीष्ट स्पष्ट नहीं होता है। वस्तुतः मेघ 'काम' का रूप है। वह स्वयं काम है और समग्र प्रकृति का पुरुष है, जो 'श्रवणसुभग' गर्जना सुनाकर, उसमें नवीन प्रसव का विधान करता है। मेघ ही 'प्रकृति' के वन्द्यात्वदोष को निराकृत करने की सामर्थ्य रखता है। इसी कारण, वह 'प्रकृतिपुरुष' तथा 'कामरूप' है। डॉ. अग्रवाल ने अत्यन्त निपुणता पूर्वक इन्द्र, मेघ तथा पजनन शक्ति की एकरसता उपस्थापित की है। इन्द्र 'शतक्रतु' है। 'क्रतु' का अर्थ शक्ति या वीर्य है। अतएव इन्द्र अगणित, अपरिमेय वीर्य अर्थात् प्रजननशक्ति का पर्याय है। वेदों में इन्द्र के वर्षणकार्य का विपुल वर्णन उपलब्ध होता है। 'वृष' शब्दसे 'इन्द्र' का घनिष्ठ सम्बन्ध संलक्षित है। 'वृष' तथा 'वृषभ' शब्दों का लगभग तीन सौ बार ऋग्वेद में इन्द्र के विशेषण के रूप में प्रयोग हुआ है। 'सोम' के लिए किए गए सौ प्रयोगों में भी इन्द्र का साहचर्य है। जो पुरुषों में 'वृष' है। वही स्त्रियों में 'सोम' है। शेष दो सौ प्रयोगों में प्रायः रेतःसचन तथा पुरुष के प्रजनन कार्य का निर्देश किया गया है। शतपथ, ताण्ड्य एवं कौषीतकि ब्राह्मणों में इन्द्र को साक्षात् वृष कहा गया है। जैसे नव मास तप कर मेघ अपनी सुखद गर्जना से पृथ्वी में पहले शिलीन्धरूप रोमांच उत्पन्न करता है, तब वास्तविक वर्षण करके, उसे प्रसव के लिए समर्थ बनाता है, वैसे ही सम्पूर्ण क्रम, पुरुष एवं योषित में भी वर्तमान है।

अतएव, इन्द्र एवं मेघ दोनों ही कामशक्ति के प्रमुख प्रतीक हैं। इसीलिए, कामार्त्त यक्ष ने मेघ के इन्द्ररूप, प्रकृतिपुरुषरूप तथा कामरूप का स्मरण कर, अपनी पमकातर अवस्था में उसे ही प्रणयसंवाद का वाहक बनाना निश्चित किया।

मेघ की संवेदनशीलता से यक्ष भूरिशः अभिभूत है, क्योंकि वह जानता है कि मेघ उसकी कामवेदना को सही ढंग से, उसकी सम्पूर्ण गहराई में समझ सकता है। अतएव वह संतप्तों के शरणरूप पयोद को रक्षेश्वरों की विख्यात पुरी अलका में भेजता है, जहाँ के मनोरम हर्म्य भगवान् शिव के मस्तक से विच्छुरित होने वाली चन्द्रिका से धवलित होकर, शोभायमान होते हैं। इसके अनन्तर, यक्ष ने मार्गस्थ जिन छवियों का निर्देश किया है, उनमें चैतन्यप्रस्फुरण के कारण, असीम सौन्दर्य समाविष्ट हो गया है।

अचेतन मेघ ने कामपुरुष के रूप में प्रकृति के जिन-जिन पदार्थों और सत्त्वों को छू दिया है, वे सब के सब सुन्दर और दर्शनीय बन गए हैं। 'पूर्वमेघ' प्रकृति के रमणीय चित्रों की ऐसी मनोभिराम शाला है, जिसमें समग्र जगती, सचेतन एवं भावनाशील बनकर, प्रणयदूत पयोद का अभिनन्दन करती है तथा अपने अंतरंग उल्लास को नाना प्रकार से अभिव्यंजित करती है।

कालिदास ने मेघप्रयाण के लिए जो पथ निर्दिष्ट किया है, वह स्नेह की शीतल छाया से ओतप्रोत है। विरह की अवधिगणना में संलग्न पतिव्रता 'भ्रातृजाया' को मेघ शीघ्रातिशीघ्र यक्ष का संवाद सुना दे, यही उद्दिष्ट कार्य है, जिसके सम्पादनार्थ मेघ को भेजा जा रहा है, क्योंकि अंगनाओं के कुसुमकोमल, प्रणयकातर हृदय को आशा का बन्धन ही टूटकर बिखर जाने से रोके रखता है।³

यक्ष की प्रधान प्रार्थना तो यही है कि मेघ सद्यः उसकी प्रिया के दर्शन करे, लेकिन वह जानता है कि 'मेघ' प्रकृतिपुरुष है। इसी कारण केवल एक ही विप्रयुक्ता कामिनी को आश्वस्त करना उसके गौरव क अनुकूल नहीं होगा। अतएव, पशु, पक्षी, लता, वीरुध, नदी, पर्वत, जितने भी चराचर पदार्थ मार्ग में उसे मिलेंगे, उन सभी की तपन बुझाकर, वह सभी के हृदयों में नवीन उमंग की सृष्टि करेगा।

ध्यातव्य है कि यक्ष अपनी प्राणदयिता की चिन्ता में स्वार्थपरायण मात्र नहीं है। उसकी अपनी प्रेमकातरता की अनुभूति अन्यों की प्रेमवेदना की अनुभूति के लिए भी उसे सक्षम बना देती है। अतः वह मेघ को केवल अपने

प्रेमसन्देश का वाहक मात्र नहीं बनाना चाहता, अपितु वह चाहता है कि जहाँ—जहाँ प्रेम की छाया ने संचार किया है, वहाँ—वहाँ वह अवश्य रुके और कहीं अपने 'नयनसुभग' रूप दिखाकर, कहीं 'श्रवणसुभग' गर्जन सुना को सुनाकर, सम्पूर्ण जंगम तथा स्थावर प्रकृति को उल्लसित एवं उद्वेलित कर दे। यक्ष ने आरम्भ में ही मेघ के साथ भाई का नाता जोड़ लिया है। अपनी पत्नी को उसकी भाभी कहकर अभिहित किया है। भौजाई का प्रणयसन्देश सुनाने में भारतीय दृष्टि कोई नैतिक व्यवधान नहीं मानती है। अतः स्वभाव से तथा सम्बन्ध से, दोनों ही दृष्टियों से, 'मेघ' प्रणयदूत के कर्म निस्पादन हेतु सर्वथा उपयुक्त बन गया है।

संचित प्रेमराशि को सन्देशकथन के बहाने पाठकों एवं श्रोताओं के समक्ष पूर्णतः रसकलशवत् उड़ेल देना 'मेघदूत' का प्रमुख उद्देश्य है। प्रकृति के सम्पूर्ण साम्राज्य में इस जानकारी से कि प्रणय का दूत एक महान् अनुष्ठान लेकर यात्रा कर रहा है, सर्वत्र अनुकूलता, सहानुभूति तथा सेवासाहाय्य की तत्परता व्याप्त हो गई है। अनुकूल पवन मन्द—मन्द गति से सौम्य पयोद को आगे बढ़ा रहा है, गर्व से भरा पपीहा बायीं ओर आकर मधुरध्वनि कर रहा है, गर्भाधान का उत्सव मनाने वाली बलाकाएँ पंक्तिबद्ध होकर उसकी सेवा के लिए सन्नद्ध हैं और प्रिय सखा तुल्य शैल अपना कण्ठालिंगन देने के लिए आतुर होकर, आँसू बहाता हुआ अपना स्नेह प्रकट कर रहा है। मार्ग में जब कभी पयोद थकान से खिन्न हो जाएगा, तब वह भिन्न—भिन्न स्रोतों का जल पीता हुआ जाएगा। स्वस्थ होने के अनन्तर जब वह व्योममार्ग में आगे बढ़ेगा, तब चमचमाते रत्नों की झिल—मिल ज्योति के समान दिखाई पड़ने वाला इन्द्रधनुष उसके श्यामल शरीर को और भी नई कान्ति से उसी प्रकार सुशोभित करेगा, जिस प्रकार झलकती हुई मयूरशिखा स मुरलीधर कृष्ण का गात्र सुशोभित होता था। वस्तुतः प्रणय के प्रसारकों को सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य का वरदान निरंतर मिलना ही चाहिए, जैसा कि 'मेघ' को ये विभूतियाँ बराबर मिलती गई हैं। उसके विश्राम के लिए यक्ष ने मार्गस्थ अनेक पड़ावों का निर्देश किया है, जहाँ वह नवीन शक्ति अर्जन करता हुआ, अपने सम्पर्क में आई अन्य वस्तुओं को भी सौन्दर्य का दान देता हुआ, पके फलों की दीप्ति से भ्राजित वन्य रसालों द्वारा घिरे हुए शैलशिखर की शोभा की श्रीवृद्धि में यह मेघ अत्यन्त सहायक सिद्ध होगा। इस सन्दर्भ में कवि का कथन है कि पके फलों से दीप्त जंगली आम के वृक्षों से घिरे उस पर्वत की चोटी पर, जब तुम चिकनी वेणी की तरह काले रंग से धिर जाओगे, तब उसकी शोभा देवदम्पतियों द्वारा देखी जाने योग्य ऐसी हो जायेगी, जैसे मध्यभाग में साँवला तथा अन्य सब ओर से पीला पृथ्वी का स्तन उठा हुआ है।⁴

शैलराज हिमवन्त से नीचे उतरती हुई गंगा के स्फटिक के समान निर्मल स्वच्छ जल में जब मेघ की छाया पड़ेगी, तब वह धारा ऐसी सुशोभित होगी, जैसे प्रयाग से अन्यत्र उसमें यमुना भी आ मिली हो। वहाँ आकर बैठने वाले कस्तूरी मृगों की नाभियों से निकलने वाली गंध से सुरभित शिलाओं वाले उस हिमधवल पर्वत के शिखर पर जब तुम थकावट मिटाने के लिए बैठोगे, तब उसकी शोभा ऐसी जान पड़ेगी, मानो शिव के वाहन, गौरवर्ण नन्दी ने सींगों पर गीली मिट्टी लगा ली हो। चिकने घुटे हुए अंजन के समान काले तुम कटे हुए हाथीदौत के टुकड़े के समान, धवल कैलाश की ढाल पर आरूढ़ होने पर तम्हारी शोभा, गोरे रंग वाले बलराम के कन्धों पर शोभायमान नीलवस्त्र की भाँति होगी।

हे इच्छानुरूप संचरण करने वाले मेघ! कैलाश की गोद में बैठी हुयी 'अलका' जिसकी गंगारूपी साड़ी खिसक गई हो, ऐसी उस 'अलका' को प्रणयी कैलाश के क्रोड में बैठी हुई देखकर तुम अवश्य ही पहचान जाओगे। वर्षाकाल में जब उसके ऊँचे महलों पर घरकर तुम सलिल की धारा बरसाने लगोगे, तब वह ऐसी सुशोभित हो उठेगी, जैसे किसी कामिनी के सिर पर मोतियों की जाली से गुँथा हुआ केशपाश चमक रहा हो।⁵

संस्कृत का कवि वैभवसमृद्धि के वातावरण में विचरण करता था। इसलिए रमणियों के रम्यांगों तथा भूषणों—प्रसाधनों पर सदैव दृष्टिपात करते रहने के कारण, उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं के लिए, इन वस्तुओं की अप्रस्तुत रूप में उन्मुक्तभाव से नियोजना करता चलता था। कालिदास के अप्रस्तुतों में अंजन, वेणी, उरोज, साड़ी मुक्ताजाल इत्यादि का प्राचुर्य मिलता है, जो आज के साधारण पाठकों को भी चमत्कृत एवं आह्लादित कर देता है।

मेघ को प्रधानतया रसिक के रूप में ही चित्रित किया गया है। उसके विश्राम के लिये निर्दिष्ट स्थल वेत्रवती नदी, नीचैः पर्वत, उज्जयिनी की ऊँची अट्टालिकाएँ इत्यादि सभी विलासविभ्रमों से संयुक्त है। निर्विन्ध्या तथा गंभीरा नदियाँ तो मानो उसकी विशिष्ट प्रेयसियाँ अथवा नायिकाएँ हैं, जिनका रस वह रुक—रुककर आस्वादित करेगा।⁶ सौदामिनी रूपी प्रियतमा का संयोग उसे प्राप्त ही है⁷ साथ ही साथ पौरांगनाएँ, वारवनिताएँ तथा देवयुवतियाँ सभी उसका स्वागत करेंगी क्योंकि वह उनके नेत्रों का कौतूहल बनकर उनकी चंचल चितवन का सुख लूटेगा।⁸ किम्बहुना चर्मण्वती नदी के पृथुल प्रवाह में प्रतिबिंबित मेघ को, पृथ्वी के वक्ष पर झूलते हुए मोतियों के हार के बीच में अनुस्यूत इन्द्रनीलमणि के मोटे मनके से उपमित किया गया है।⁹

पूर्वमेघ में मेघ का मार्गनिर्देश करता हुआ यक्ष कहता है कि हे मेघ! कृषि का फल तुम्हारे अधीन है, यह जानकर नई उमंग से भरी हुई, भ्रूविलास से अनभिज्ञ जनपदीय बालाएँ अपने प्रीतिस्निग्ध नयनों से तुम्हारे रूप का पान करेंगी। तुम मालक्षेत्र के ऊपर इस प्रकार जल बरसाना कि हल के फाल से तत्काल खुरची हुई भूमि गंधवती हो उठे। फिर थोड़ी देर बाद क्षिप्रगति से उत्तर की ओर बढ़ जाना।¹⁰

'पूर्वमेघ' में 'ब्रह्मचारी' पयोद¹¹ को रामगिरि से भगवान शंकर के अट्टहास के पंजरूप तथा देववनिताओं के लिए स्वच्छ दर्पण के समान कैलास के उत्संग में बसी हुई अलका तक पहुँचाया गया है, जब कि 'उत्तरमेघ'

में अलका के सुख विलास, यक्षिणी के वियोगव्यथित रूपसौन्दर्य तथा अन्ततः यक्ष के प्रणयसन्देश का अत्यन्त ललित एवं मर्मभेदी वर्णन किया गया है।

‘उत्तरमेघ’ में प्रथम पद्य में ही महाकवि ने ‘कामरूप मेघ’ को अलका के प्रासादों की प्रतिस्पर्धा में खड़ा कर दिया है। यक्ष ‘मेघ’ स कहता है कि अलका के महल अपने विशिष्टगुणों से तुमसे प्रतिस्पर्द्धा करेंगे। तुम्हारे पास यदि बिजली है, तो उनमें मोहिनी वनिताएँ हैं। तुम्हारे पास इन्द्रचाप है, तो उनमें सुरम्य चित्र अंकित हैं। तुम्हारे पास मधुर गम्भीर गर्जन है, तो उनमें संगीत के मृदंग ठनकते रहते हैं। तुम्हारे भीतर जल भरा है, तो उनमें मणियों से निर्मित चमकील भूमिखण्ड हैं, यदि तुम आकाश में उन्नत उठे हुए हो, तो वे गगन का चुम्बन करते रहते हैं।¹²

प्रारम्भ में यक्ष ने मेघ के श्रेष्ठ कुल का कथन करके बाद में उसकी रसिकता, परोपकारिता एवं परदुःख-संवेद्यता की बड़ाई करके, उसे दौत्यकर्म हेतु तैयार कने का उपक्रम किया, तदपरान्त अब अपने ऐश्वर्यपूर्ण सम्बन्धों की विज्ञप्ति करके, वह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक सम्मान संकेतित कर रहा है कि मेघ को उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिए। इस प्रकार कवि ने विप्रयुक्त अन्तस् की जो तलस्पर्शी विवृति की है, वह उसकी सहृदयता को आलोकित करती है कि मेघ उज्जैन की कृष्णाभिसारिकाओं के तिमिराच्छन्न पथ की कसौटी पर कसी कंचनरेखा की तरह चमकती हुई बिजली से प्रकाशित करेगा।¹³

यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि प्रणयकातर यक्ष ने मेघ से यह अनुरोध किया है कि प्रणयाभिसार करने वाली कामिनियों का पथ आलोकित करके, वह उनके प्रियसमागम में सहायता पहुँचावे। वस्तुतः प्रेमार्द्र मानस में करुणा एवं सहानुभूति के अतिरिक्त अन्य तत्त्व प्रविष्ट हो ही नहीं सकते। इसी क्रम में उज्जयिनी को कवि ने स्वर्ग का ‘कान्तिमान खण्ड’ बतलाया है, लेकिन अलका के गौरव एवम् ऐश्वर्य के सम्मुख वह निश्चित रूप से हतप्रभ हो जाएगी। स्फटिक-निर्मित हर्म्य, उनमें विलास करने वाली ललनाएँ तथा उनकी अक्षय निधियाँ, इन सबका वर्णन करके कवि ने प्रकारान्तर से यह कह दिया है कि अलका के निवासी यक्षों को ‘अर्थ’ नामक पुरुषार्थ के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता है। अतः वे अपने ‘कामप्रधान जीवन’ का आस्वाद लेने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र रहते हैं।¹⁴

ज्ञातव्य है कि यक्ष का प्रणयसन्देश किसी परकीया प्रेयसी के प्रति नहीं, अपितु अपनी पतिव्रता धर्मपत्नी के लिए, प्रेषित किया गया है। यक्ष को यह विश्वास है कि उसका भव्यभवन उसके विप्रयोग में छविहीन हो गया होगा, क्योंकि सूर्य के अभाव में कमल हतश्री हो जाता है। अतः उसे पूर्ण विश्वास है कि छरहरी देह वाली, नवव्यक्त यौवनवाली, नन्हें-नन्हें दाँतों वाली, पके बिम्बाफल के समान लाल अधरों वाली, क्षीणकटि वाली, चकित हरिणी की लोल चितवन वाली, गहरी नाभि वाली, नितम्बों के भार से अलसाई गति वाली, स्तनों के भार से कुछ झुकी हुई-सी, जो अलका की युवतियों में विधाता की पहली सृष्टि है,¹⁵ वह मेरी प्राणप्यारी वियोग की गाढ़ी उत्कंठा के कारण कुछ ऐसी विवर्ण बन गई होगी, जैसे पाले की मारी कमलिनी अन्य प्रकार की द्युति वाली बन जाती है।¹⁶

विरहानल-सन्तप्त यक्ष अपनी विरहविधुरा पत्नी की मानसिक एवं शारीरिक दशा की कल्पना करता हुआ, मेघ से कहता है कि विरह के पहले दिन मैंने उस प्राणप्रिया की जिस वेणी को जल्दी में बाँधा था और शापान्त में मैं ही जिसे खोलूँगा, उस खुरदरी वेणी को छूने से भी उसे पीड़ा होती होगी तथा बढ़े हुए नखों वाले हाथों से वह अपने कोमल कपोलों से उसे बारम्बार हटाती होगी। उस अबला ने आभरण त्याग दिये होंगे और शय्या पर किसी प्रकार अपना सुकुमार शरीर रखती होगी। उसे देखकर, तुम्हारे नेत्रों से अवश्य आँसू की धाराएँ फूट पड़ेंगी, क्योंकि आर्द्र अन्तरात्मा वाले व्यक्ति की चित्तवृत्ति प्रायः करुणा से ओत-प्रोत होती है। किम्बहुना मुँख पर लटकने वाले केशपुंज जिसकी तिरछी चितवन को रोकते हैं, काजल की चिकनाई के बिना जो सूना है तथा वियोग में मधुपान छोड़ने के कारण जिसकी भौंहे अपनी चपलता भूल चकी हैं, ऐसा उस मृगाक्षी का वामनेत्र तुम्हारे पहुँचने पर ऊपर की ओर फड़कता हुआ ऐसा प्रतीत होगा, जैसे सरोवर में मछली के फड़-फड़ाने से खिलता हुआ नीलकमल शोभायमान होता है।

यक्ष ने वैसे तो रात में ही अपना संदेश सुनाने की सलाह दी है, लेकिन यदि वह विरहिणी निद्रामग्न हो तो यक्ष का मेघ से अनुरोध है कि वह उसे जगाने की चेष्टा न करे, अतएव वह सुस्पष्ट शब्दों में कहता है कि हे मेघ! यदि उस समय मेरी प्रिया नींद का सुख ले रही हो, तो गर्जना बन्द करके एक पहर तक उसके जागने की प्रतीक्षा करना। ऐसा न हो कि कठिनाई से स्वप्न में मिले हुए प्रियतम के साथ गाढ़े आलिंगन के लिए कण्ठ में डाला हुआ उसका भुजपाश अचानक खुल जाय।¹⁷

यक्ष की इस प्रार्थना में प्रणयी अन्तस् की कोमलता, प्रिय के सुखप्राप्ति की अगाध लालसा, तथा पिय के प्ररुद्धस्नेह की सच्चाई के प्रति उसका अगाध विश्वास अत्यन्त तलस्पर्शी ढंग से अभिव्यंजित हुआ है। यक्ष पूर्वास्वादित सुख की स्मृतियों के उद्वेलन से अत्यंत पीड़ित हो रहा है। मुक्ताजाल से उसके केशों का अलंकरण, अंगों का संस्पर्शन, इत्यादि संयोग कालीन विनोदों की स्मृति ने यक्ष को उत्कण्ठा से भर दिया है। अतएव वह अपनी प्यारी की प्रतिकृति की खोज कर रहा है, जिसके सन्निकर्ष में उसके वियोग का ताप कुछ कम हो सके। अतः यक्ष प्रकृति के राज्य में अपनी दयिता के रूपसौन्दर्य का अनुसंधान करता हुआ, कहता है कि हे प्रिये! प्रियंगुलता में तुम्हारे कोमल अंग को, चकित हरिणी के नेत्रों में तुम्हारे कटाक्ष को, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख की

कान्ति को, मोरपंखों में तुम्हारे केशों को तथा नदी की कुटिल तरंगों के रूप में तुम्हारे भ्रूविलासों को मैं देख पाता हूँ। हे मानिनी! एक स्थान पर कहीं भी तुम्हारी जैसी छवि के दर्शन नहीं कर पा रहा हूँ।¹⁸

यक्ष की अधीरता को बढ़ाने वाला प्रधान कारण यह है कि कहीं भी उसे ऐसी वस्तु नहीं दिखाई पड़ रही है, जिसमें वह प्रिया के सम्पूर्ण सौन्दर्य को देखकर, अपने विप्रयुक्त मन को कुछ संतोष प्रदान कर सके। वस्तुतः सादृश्य में मनबहलाव करना एक प्रकार प्रकार की आत्मवंचना ही है, लेकिन प्रणयिजनों को इस प्रवंचना में भी रस मिलता है और वे इसी बहाने जीवन के भार को ढोने में समर्थ होते हैं। यक्ष की प्रिया तो विधि की प्राथमिक सृष्टि है, जिसमें उसने अपना समग्र कौशल लगा दिया होगा। अतएव बाद में रचे गये जगत् के अन्य पदार्थों में उसके रूप के विभिन्न आकर्षणों का अलग-अलग कछ आभास तो मिल सकता है, किन्तु उन सबका समवाय तो कठिन ही है।

जब यक्ष बाह्य वस्तुओं में यह अभोप्सित सादृश्य नहीं देखता, तब वह शिलाओं पर गेरू से प्यारी का प्रणयकुपित चित्र बनाने लगता है, किन्तु उस समय उसकी आँखों में आँसू छा जाते हैं और क्रूर दैव वह मिलन भी सम्पन्न नहीं होने देता। स्वप्न में यदि वह कभी मिल जाती है, तो वह उसे भुजाओं में भर लेने के लिए शून्य में बाहें फैलाता है, जिसे देख कर वनदेवियाँ रोने लगती हैं। उसका सन्ताप इतना बढ़ गया है कि वह हिमगिरि से आने वाले शीतल पवन को यह सोचकर छाती से लगा लेता है कि कदाचित् वह पहले प्यारी के अंगों का स्पर्श कर चुका हो। नानाविध कल्पनाओं में मन रमा करके यक्ष किसी तरह प्राण धारण कर रहा है और अपनी प्रिया का भी धर्य धारण करने का सन्देश देता है कि हे कल्याणि! तुम भी धैर्य खोकर सर्वथा कातर मत बनो। कौन ऐसा है जिसके भाग्य में सदैव सुख या सदैव दुःख ही लिखा हो? मनुष्य का 'भाग्य' रथ के पहिये की नेमि के समान बारी-बारी से नीचे-ऊपर आता-जाता है।¹⁹ इस कथन में प्रणयकातर हृदय की विवशता मुखर हो उठी है।

अन्ततोगत्वा यक्ष का संदेश प्रेमराशि के संचय का सन्देश सिद्ध होता है। परिस्थिति की अवमानना करके स्नेहदीप का निरन्तर प्रज्वलित रखने का उद्बोधन है। वह यक्ष अपनी प्राणवल्लभा को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि इस असह्यवियोग में भी उसके प्रति उसका प्रेम घटा नहीं है, अपितु उपचय एवं उत्कर्ष को ही प्राप्त हुआ है। यक्ष ने अपनी प्रिया को नाना-प्रकार से प्रबोध दिया है, लेकिन उसका जीवन भी प्रातःकालीन कुन्दकुसुम की तरह शिथिल बन गया है। उसे ऐसा लगता है कि वह प्रिया से प्राप्त कुशल सन्देश से ही जीवित रह पाएगा।
20

ज्ञातव्य हे कि 'मेघदूतम्' पर अब तक शताधिक टीकायें उपलब्ध हैं। विदेशी विद्वानों ने भी इसकी भूयसी प्रशंसा की है। प्रो. विलसन ने इसकी 'सरल, सुष्ठु एवं अत्यन्त परिमार्जित' शैली की प्रशंसा की है। मैकडॉनल इसमें उपलब्ध भावों की गहराई तथा प्रकृति के रमणीय चित्रों के प्रशंसक हैं। 'मेघदूतम्' निश्चित ही कालिदास की रसोद्गारिगिरा का सर्वोत्कृष्ट प्रासाद है। 'मेघदूतम्' में महाकवि ने प्रकृति के एक अंगविशेष 'मेघ' को एक प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है और प्रकृति के अपेक्षाकृत अप्रसिद्ध रूप वनदेवियों का भी समावेश किया है। मेघ को मार्गनिर्देश देते हुए देश के मध्यभाग से लेकर सुदूर उत्तरभारत तक के अनेक प्रदेशों की प्राकृतिक सुषमा का कवि ने अत्यन्त रमणीय निरूपण किया है। साथ ही जड़ प्रकृति में प्राणप्रतिष्ठा करके, उसे मनुष्य के सुख-दुःख में सहभागी भी बनाया है। आश्चर्य तो इस बात का है कि अलका जैसी दिव्य विलासों से परिपूर्ण गन्धर्व नगरी की वनिताओं का शृंगारप्रसाधन रत्न, माणिक्यों आदि का न दिखाकर कवि ने प्राकृतिक पदार्थों से रचित बताया है—

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्ध, नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।

चूडापाश नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं, सीमान्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ 1.22 ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्राकृतिक व्यापारों एवं मानवीय भावों का अपूर्व सामंजस्य है। महाकवि ने जिस प्रेमपयोधि को 'मेघदूतम्' रूपी प्रेमकलश में संचित करने का सफल एवं स्तुत्य प्रयास किया है, वह निश्चित ही युगान्त पर्यन्त प्रेमपिपासु सुधी साहित्य प्रेमियों की प्रेमपिपासा को शान्त करता रहेगा।

सन्दर्भ (REFERENCE)

1. तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो,
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः,
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पूनर्दूरसंस्थे ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 03 ॥
2. धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः,
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे,
कामात्तां हि प्रकृतिकृपाणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 05 ॥
3. तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नीम्,

- अव्यापन्नामवहितगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानां,
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 10 ॥
4. छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रैः,
त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थाम्,
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 18 ॥
5. तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्तगंगादुकूला,
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना,
मृक्ताजाल-ग्रथितमलकं कामिनीवाभ्र-वृन्दम् ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 67 ॥
6. वीचि-क्षोभ-स्तनित-विहगश्रेणिकांचीगुणायाः,
संसर्पन्त्याः स्वस्वसलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यान्तरः सन्निपत्य,
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रामो हि प्रियेषु ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 30 ॥
7. तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां,
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं,
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्यपेतार्थकृत्याः ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 42 ॥
8. मेघदूतम् ॥ 01.39 ॥ 01.51 ॥ 01.65 ॥
9. त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे,
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 50 ॥
10. त्वय्यात्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः,
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधू-लोचनैः पीयमानः ।
सद्यः सोरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं,
किञ्चित्पश्चाद् ब्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 16 ॥
11. ब्रह्म 'उदक' अर्थात् जल का है । उसके साथ विचरण करने वाला मेघ 'ब्रह्मचारी' है ।
इसीलिए वह नित्ययुवा है । ऋग्वेद में 'उषा' को भी 'अमर्त्या पुराणी युवती' कहा गया है ।
12. विद्युत्त्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीर घोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुंगमभ्रंलिहाग्राः,
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैविशेषैः ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 1 ॥
13. गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं,
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेदैस्तमोभिः ।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी,
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विकलवास्ताः ॥ मेघदूतम् ॥ 01 . 41 ॥
14. मंदाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुदिभिः,
मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः ।
अन्चेष्ट्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः,
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 06 ॥
15. तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां,
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 22 ॥
16. तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं,
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।
गाढोत्कण्ठां गुरुषुदिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां,
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 23 ॥
17. तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्याद्,
अन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्,

- सद्यः कण्ठच्युत-भुज-लता-ग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 39 ॥
18. श्यामास्वंगं चकितहरिणीप्रेक्षणो दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 46 ॥
19. नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे,
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रकेनेमिक्रमेणा ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 52 ॥
20. आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते,
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ।
साभिज्ञान-प्रहित-कुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि,
प्रातः कुन्दपसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ मेघदूतम् ॥ 02 . 56 ॥

